:- प्रथम अध्याय - :

-: हिन्दी उपन्यास साहित्य और शेवडे :-

प्रथम अध्याय

हिन्दी उपन्यास साहित्य और शेवडे

(अ) विषय प्रवेश --

हिन्दी भाषा साहित्य और संस्कृति के विकास में प्राचीन काल से ही भारत वर्ष के विभिन्न भाषा-भाषियों का योगदान रहा है। भारत वर्ष की यह परम्परा रही है कि वह भाषा, साहित्य और संस्कृति की विभिन्नता से विभूषित है। इस देश में विभिन्न भाषा और साहित्यिक परम्पराओं में आदान-प्रदान की एक समृद्ध परम्परा देखी जा सकती है। कवींद्र रवीन्द्र तो भारत को 'महामानवेर समुद्र' कहा करते थे। यहाँ अनेक धर्म जाति और भाषाओं का होना इसके अनुरूप ही है। भाषा की विभिन्नता के होते हुए भी आदान-प्रदान की परम्परा समृद्ध होने के कारण भारतीय साहित्य का एक आन्तरभारतीय रूप विकसित हो गया है। जो बात भारतीय साहित्य की है, वही राष्ट्रभाषा हिन्दी की भी है। हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में हिन्दी भाषियों के साथ-साथ हिन्दीतर भाषा-भाषी साहित्यकारों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। प्राचीन काल से ही मराठी और हिन्दी के भाषा और साहित्य में परस्पर सहयोग होता आया है। अनेक मराठी सन्तोंने हिन्दी में भक्तिपर रचनाएँ की हैं। यह परम्परा आधुनिक युग में भी जारी रही है। पत्रमहर्षि बाबूराव पराडकर, 'तारसप्तक' कवि डॉ. प्रभाकर माचवे, सर्वोदय विचारक आचार्य विनोबा भावे, लोकमान्य तिलक, स्वा.सावरकर, नाटककार शंकर शेष जैसे अनेक साहित्यकारों ने आधुनिक हिन्दी भाषा और साहित्य को विकसित करने में हाथ बटाया है। श्री अनन्त गोपाल शेवडे

इसी श्रेणी में गीने जायेंगे। पत्रकार, साहित्यकार और राष्ट्रभाषा के प्रचारक के रूप में उन्होंने जो कार्य किया है, उसे सुवर्णाक्षरों में लिखा जायेगा। साहित्यकार के रूप में शेवडे जी ने उपन्यास, कहानी, निबंध, अनुवाद जैसे विभिन्न क्षेत्रोंमें हस्ताक्षर किये। शेवडे जी बहुमुखी साहित्यकार थे। ऐसा होकर भी उनका उपन्यासकार काफी प्रबल नजर आता है। सन १९३२ में 'हंसाबैबाला' उपन्यास के प्रकाशन से शेवडेजी का हिन्दी में उपन्यासकार के रूप में अविर्भाव हुआ तब हिन्दी उपन्यासों की एक विशाल परम्परा स्थापित हो चुकी थी। शेवडे जी के उपन्यासों का विकासात्मक अध्ययन करने के लिए जरुरी है कि हिन्दी उपन्यासों का उद्भव और विकास का विहंगमाव लोकन किया जाय।

(आ) हिन्दी उपन्यास का उद्भव --

हिन्दी साहित्य में उपन्यास विधा सर्वाधिक लोकप्रिय है। उपन्यास से जीवन चित्रण एवं विश्लेषण का कार्य विशेष रूप से होने के कारण आलोचकों व्दारा उसे 'महाकाव्य' की संज्ञा प्राप्त हो चुकी है। और यह सच भी है। उपन्यास साहित्य का एक रूप है। भाषा के माध्यम से उसमें जीवन और जगत की अभिव्यक्ति होती रहती है। उपन्यासकार समाज में देखे हुए अनेक चरित्रों को पात्रों के रूप में उपन्यासों में प्रतिबिंबित करता है। ऐसे पात्रों की योजना सुनिश्चित एवं सूत्रबद्ध होती है। उपन्यास में कल्पना और यथार्थ का सुन्दर समन्वय होता है। हम उपन्यास को पढकर एक ओर हलके मनोरंजन से दिल को बहला लेते हैं, वही दूसरी ओर उसके यथार्थ से अन्तर्मुख भी हो जाते हैं। उपन्यास मात्र रंजन का साधन नहीं है। वह हमारे जीवन को निश्चित दिशा एवं दर्शन से अभिभूत कराता है। उपन्यास विधा पिछले कितने ही वर्षोंसे निरंतर समृध्द होती आयी है। भविष्य में भी उसके विकास की गुंजाइश है।

सत्रहवीं शती में फ्रान्स एवं इंग्लैन्ड में उपन्यास के उदय के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे थे। किन्तु उपन्यास लेखन परम्पराका विधिवत् श्रीगणेश अठारहवीं शताब्दी से हुआ। अठारहवीं शती के फ्रेन्च उपन्यासकार 'ल साज' के 'गिलब्ला' उपन्यास में समकालीन समाज का सर्वांगीण विवेचन मिलता है। उसके बाद आनेवाले फ्रेन्च उपन्यासकारों ने समाज की बुराइयों और नैतिक व्यवस्थाओंके खोखलेपन का पर्दाफाश किया। इस प्रकार 'उपन्यास' जन्म लेते ही सामाजिक आलोचना का शक्तिशाली माध्यम बन गया है। उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ तक अंग्रेजी और फ्रेन्च का उपन्यास साहित्य पर्याप्त प्रौढ हो चुका था। उन्नीसवीं शताब्दी तो रूसी उपन्यास - साहित्य का 'स्वर्णयुग' माना जाता है। इस दृष्टिसे फ्रेन्च, अंग्रेजी और रूसी भाषा के उपन्यास साहित्य का इतिहास ही वस्तुत: उपन्यास साहित्य के विकास का इतिहास है। इसी पृष्ठभूमि के आधारपर हिन्दी उपन्यास का उद्भव एवं विकास का अध्ययन करना उचित होगा।

हिन्दी उपन्यास का उद्भव आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रारंभ में भारतेन्दु युग में हुआ। कुछ विद्वानों के मतानुसार हिन्दी उपन्यास का उद्भव अंग्रेजी साहित्य के परिणाम स्वरूप माना जाता है। भारत के जो प्रदेश अंग्रेजी के सम्पर्क में पहले आये, उनमें उपन्यासोंका प्रचलन अपेक्षाकृत पहले हुआ। यही कारण है कि बंगला में उपन्यासों का प्रचलन हिन्दी के पहले हो गया। बांगला साहित्य के उपन्यासों के विकसित रूप की देखा देखी हिन्दी में भी उपन्यासों का सूत्रपात हुआ। कतिपय विद्वानों के मतानुसार 'बाणभट्ट' की 'कादम्बरी' भारत का पहला उपन्यास है। किन्तु 'कादम्बरी' में अलौकिकता, भावात्मकता और अलंकारिकता के अत्यधिक आग्रह के कारण उसे आधुनिक उपन्यास की परिभाषा की कसौटीपर ग्रहण करना उचित नहीं होगा। हिन्दी के अधिकांश समीक्षक सन १८८२ में प्रकाशित लाला श्रीनिवास के 'परीक्षा गुरु' को हिन्दी का प्रथम उपन्यास मानते आ रहे हैं। किन्तु नये शोधों के फलस्वरूप इ.स.१८७० में प्रकाशित 'देवरानी

जेठानी की कहानी ' हिन्दी का प्रथम उपन्यास सिद्ध होता है। इसके लेखक ' गौरीदत्त ' है। इसे डा. गोपाल राय ने संपादित करके ग्रंथ निकेतन पटना से प्रकाशित किया है। इसके बाद सन १८७७ ई. में पं.श्रद्धाराम फुल्लौरी का ' भाग्यवती ', सन १८८१ ई.में राधाकृष्णदास का ' निस्सहाय हिन्दु ' जैसे उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। अतएव अब ' परीक्षागुरु ' को हिन्दी का पहला उपन्यास मानने में कोई अर्थ नहीं रहा है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के इन समूचे उपन्यास साहित्य को दृष्टिपथ में रखते हुये यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उपन्यास विधा ने सामाजिक पुनर्निर्माण, पारिवारिक एवं चारित्रिक सुधार, धर्मान्धता और उदार मानवतावादी दृष्टिकोण के बीच संघर्ष को अपना वर्ण्य विषय बनाया। ' यह कहना अनुचित न होगा कि हिन्दी उपन्यास का जन्म पुनरुत्थान कालीन भावना के फलस्वरूप उत्पन्न नवीन चेतना और सुधारवादी आंदोलनों के गोद में हुआ।'[१]

(इ) हिन्दी उपन्यास का विकास --

हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकास का अध्ययन करते हुए एक बात स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है कि विकास का यह वृत्त प्रेमचंद को केन्द्र बनाकर विशाल से विशालतर होता गया है। प्रेमचंदजी हिन्दी उपन्यास साहित्य में ध्रुव की तरह अचल है। उन्हें केन्द्र मानकर ही विद्वानों ने हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा को निम्नप्रकार से विभाजित किया है।

---

१ हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (अष्टमभाग) - सम्पा. डा. विनय मोहन शर्मा, पृ.२३७

(१) पूर्व प्रेमचन्द युग (१८७० से १९१६ तक),
(२) प्रेमचंद युग (१९१६ से १९३६ तक),
(३) प्रेमचंदोत्तर युग (१९३६ से अबतक)

(१) पूर्व प्रेमचंद युग -- (१८७० से १९१६ तक) --

बहुमुखी प्रतिमा के धनी, आधुनिक हिन्दी साहित्य के जनक भारतेन्दु जी के निबन्धों ने आधुनिक हिन्दी उपन्यास के लिए भूमिका तैयार की। भारतेन्दु जी ने एक भी पूरा उपन्यास नहीं लिखा पर उनके एक पत्र से यह ज्ञात होता है कि इन्हीं के उत्साह दिलाने से उस समय स्व. श्री. गोस्वामी राधाचरण ने 'दीप निर्वाण', 'सरोजनी' आदि उपन्यास लिखे। लाला श्री निवासदास ने उपदेश और मनोरंजन दोनों लक्ष्योंकी पूर्ति करते हुये 'परीक्षा गुरु' की रचना की। पं.बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी' लिखकर विद्यार्थीयों को नैतिकता का पाठ पढाया। सन १८८१ में श्री राधाकृष्णदास का 'निस्सहाय हिन्दु' तथा १८९९ में हरिऔध जी का उपन्यास 'ठेठ हिन्दी का ठाट' ने अनमेल विवाह के दुष्परिणामों को चित्रित किया। इसी समय लज्जाराम शर्मा के 'धूर्त रसिकलाल', 'आदर्श दम्पति' ये उपन्यास प्रकाशित हुये। कार्तिक प्रसाद खत्री का 'दीनानाथ', रत्नचन्द प्लीडर का 'नूतन चरित' जगमोहन सिंह का 'श्यामा स्वप्न' आदि महत्वपूर्ण उपन्यास इसी युग की देन है। हिन्दी के तिलिस्मी और ऐयारी उपन्यासोंका जन्म भी इसी युग में हुआ। इस युग के प्रमुख उपन्यासकार प.किशोरीलाल गोस्वामी ने बंगला के उपन्यासों से प्रभावित होकर सभी प्रकार के उपन्यासों की रचना की। उन्होंने हिन्दी भाषा को व्यावहारिक भाषा के समकक्ष लाने का प्रयास किया। इस प्रयास से हिन्दी का प्रचार भी हुआ। उनका पहला उपन्यास 'प्रणयिनी परिणय' सफल कलाकृति है। मौलिक रोमानी ऐतिहासिक उपन्यासों के जन्मदाता गोस्वामी जी ही माने

जाते है। ब्रजनन्दन सहाय के 'सौंदर्योपासक', 'राधाकान्त' उपन्यासों में 'स्वच्छन्दतावाद' की सूचना मिल जाती है। लाला भगवानदीन का 'अद्भुत घटना' सन १९१४ ई. में प्रकाशित हुआ। जिसमें खासकर देशी राजमहलों का चित्रण नजर आता है। इनके अतिरिक्त केदारनाथ शर्मा का 'तारामती', 'गयाप्रसाद का 'दुनिया', गौरीदत्त का 'गिरीजा', अमृतलाल चक्रवर्ती का 'सती सुखदेवी', रामजी दास का 'फूल में कांटा', कृपाराम मेहता का 'माता का उपदेश', चंद्रशेखर पाठक का 'मायापुरी' मिश्रबंधु का 'पुष्यमित्र' आदि भारतेन्दु युग की उल्लेखनीय औपन्यासिक कृतियाँ हैं।

हिन्दी का प्रथम उपन्यास 'देवरानी जेठानी की कहानी' (१८७०) से लेकर प्रेमचन्द के आगमन तक का काल हिन्दी उपन्यास के शैशव एवं वय:सन्धी का काल है। इस युग के उपन्यासों में उद्देश्य की दृष्टिसे दो प्रवृत्तियाँ लक्षित होती है। (१) कोरा मनोरंजन (२) मनोरंजन के साथ सुधारवादी भावना। औपन्यासिक शिल्प की कमजोरियों के होते हुअे भी इस युग के उपन्यासों में देश और समाज में घटित होनेवाले परिवर्तनों का प्रतिबिम्ब उपलब्ध है। उपदेशात्मकता एवं भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता दिखाने की प्रबल प्रवृत्ति भी नजर आती है। हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा में इस युग के देवकीनन्दन खत्री, गोपालराम गहमरी, प.किशोरीलाल गोस्वामी, लाला श्रीनिवासदास, केदारनाथ शर्मा, ब्रजनन्दन सहाय, गौरीदत्त, मिश्रबंधु आदि उपन्यासकारों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इन में भारतेन्दु जी का कार्य तो सबके लिये प्रेरक और उल्लेखनीय होने के कारण इस युग को पूर्व प्रेमचन्द युग के साथ साथ भारतेन्दु युग भी कहा जाता है।

(२) <u>प्रेमचन्द युग</u> — (१९१६ से १९३६) —

हिन्दी उपन्यास का दूसरा युग प्रेमचन्द के आगमन से प्रारंभ होता है। सन १९१६ से १९३६ तक के दो दशकों के कालखण्ड को प्रेमचन्द युग माना

जाता है। प्रेमचन्द के अभ्युदय ने उपन्यास को एक नयी अर्थवता प्रदान की। ' प्रेमचन्द ने पहली बार उपन्यास के मौलिक क्षेत्र, स्वरुप और उद्देश्य को पहचाना। पहचाना ही नहीं उसे भव्य समृध्दि प्रदान की, वे उसे काफी ऊँचाई तक ले गये।' [१] यही कारण है कि हिन्दी के लगभग सभी विद्वानों ने प्रेमचन्द को हिन्दी उपन्यास की क्रान्तिकारी चेतना का अग्रदूत माना है। प्रेमचंद युग के प्रारंभ में सुधारवादी आंदोलनों की छाया में हिंदी उपन्यास ने आँखें खोली थी। प्रेमचंद की कलम में गति आ रही थी। इतने में ' गाँधी की आँधी ' आ गयी। इस प्रभाव के फलस्वरुप प्रेमचन्द ने ' यथार्थवाद ' को ' आदर्शोन्मुख यथार्थवाद ' का चोला पहनाया। उनकी धारणा थी कि यथार्थ का कोई न कोई आदर्श होता है। इसलिए उन्होंने यथार्थ के सामाजिक एवं व्यक्तिगत दोनों पक्षों का चित्रण किया। मध्य वर्ग की घुटन सब से गहरी होती है। इसलिये प्रेमचन्द ने अपने प्रारंभिक उपन्यासों में दहेज प्रथा, विधवा विवाह, नारी की दयनीय स्थिति, शानशौकत का दिखावा जैसी मध्यवर्ग की समस्याओं को चित्रित किया। इस दृष्टिसे उनके प्रारंभिक उपन्यास ' प्रतिज्ञा,' ' वरदान ', ' सेवासदन ', और ' निर्मला ' उन्नीसवीं शताब्दी के उपन्यासकारों की परम्परा की एक जाज्वल्यमान कड़ी के रुप में थी। उन्नसवीं शताब्दी का सुधारवादी दृष्टिकोण उनके ' प्रेमाश्रम ', ' रंगभूमि ', ' कायाकल्प ' उपन्यासों में समयानुरुप प्रतिबिंबित हुआ है। प्रेमचंद जी ने ' सेवासदन ' (१९१८) में, वेश्याओं की समस्याओं को उठाया है, तो ' प्रेमाश्रम ' (१९२१) में किसानों के शोषण को विषयवस्तु बनाया है। उनके ' रंगभूमि ' (१९२२) में स्वातंत्रता आन्दोलन की झाँकी है तो ' गबन ' (१९३०) में मध्यवर्ग के जीवन की असंगतियों का चित्रण है। उनका ' गोदान ' (१९३६) उपन्यास तो आधुनिक जीवन का ' महाकाव्य ' है। सारांश में प्रेमचन्द जी ने शताब्दियों से पद्दलित, अपमानित और उपेक्षित कृषकों की

---

१ हिन्दी उपन्यास - एक अन्तर्यात्रा - रामदरश मिश्र - पृ.२९

आवाज उठायी । पर्दे में कैद, पद पद पर लांछित और असहाय नारीजाति को महिमा प्रदान की । हिन्दी उपन्यास परम्परा को नई दिशा प्रदान की । अपने युग को समग्रता के साथ रुपायित किया है ।

प्रेमचंद युग के अन्य उपन्यासकारों ने इन्हीं प्रवृत्तियों को अपनाते हुए उपन्यास परम्परा को विकसित किया । इस युग के प्रमुख उपन्यासकार जयशंकर प्रसाद जी ने 'कंकाल', 'तितली', तथा 'इरावती' उपन्यासों में धर्म के मानव विरोधी स्वरुप का दिग्दर्शन कराया है । विश्वंभरनाथ 'कौशिक' जी ने 'माँ', 'भिखारिणी' जैसे उपन्यासों में भिखारिणी के हृदय के अनुपम प्रेम एवं त्याग का चित्रण किया है । चतुरसेनशास्त्री ने 'हृदय की प्यास', 'अमर अभिलाषा' उपन्यासों व्दारा अन्तर्कथाओं को समाज के सामने लाकर उनके अंतर दु:ख को व्यक्त किया है । 'उग्र' जी ने तो समाज के घृणित एवं कुत्सित रोगों की शल्यचिकित्सा को ही अपने उपन्यासों का विषय बनाया था । इसी युग में वृन्दावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र में मान्यता प्राप्त की तो श्रीवास्तव जी ने हास्य और व्यंग्य प्रधान उपन्यासों की रचना करके उपन्यासों के विकास परम्परा में एक अभाव की पूर्ती की । जैनेन्द्रकुमार के 'सुनीता', 'परख', 'कल्याणी' तथा इलाचन्द जोशी जी के 'पर्दे की रानी', 'प्रेत और छाया' आदि मनोवैज्ञानिक उपन्यास इसी युग की महत्वपूर्ण देन है । इस प्रकार प्रेमचन्द युग के उपन्यासों में समाज की बहुविध समस्याएँ विषयवस्तु बन गयी थी । राष्ट्रीय चेतना अपने आपमें सबसे बडी बात थी । समग्र मूल्यांकन के बाद इस युग को हिन्दी उपन्यास का 'उत्कर्ष युग' कहना उचित लगता है ।

(२) प्रेमचन्दोत्तर युग -- (१९३६ से अबतक) --

इस युग के आरंभिक काल में कुछ उपन्यासकारों ने प्रेमचंद की लीकपर चलना पसंद किया । परंतु अधिकतर उपन्यासकारों ने शिल्प, शैली

के संदर्भ में नये प्रयोग कर हिन्दी उपन्यास को बहुआयामी बनाया। यही वह युग है जहाँ हिन्दी उपन्यास मनोवैज्ञानिक, व्यक्तिवादी, आँचलिक, मार्क्सवादी जैसे कितने नये रुपों को लेकर उपस्थित हुआ। इस युग के उपन्यासकारों ने आधुनिक युग की चुनौती को स्वीकार करते हुए अपने उपन्यासों की रचना की। इन उपन्यासों में जीवन की जटिलतासे जूझने की कोशिश परिलक्षित होती है। कथानक का सीमित परिवेश, चरित्रों की आवश्यक्ता, घटनाओं की उपयोगी आयोजना आदि से उपन्यासों का कलेवर नये और सुगठित तथा सुव्यस्थित बनाने का श्रेय इसी युग के उपन्यासकारों को देना होगा। डार्विन, मार्क्स, फ्रायड जैसे विचारकों के प्रभाव ने पाप और पुण्य, अच्छा और बूरा आदि की धारणाएँ बदल दी। इस अनुभूति ने नए मूल्यों की खोज की व्याकुलता को जन्म दिया। इस युग के प्रारंभ में सन १९३६ के आसपास मार्क्स की विचार धारा ने व्यापक रुप से उपन्यास साहित्य को प्रभावित किया। जिससे शोषण के शिकार मध्यवर्ग का चित्रण करने की प्रवृत्ति हिन्दी उपन्यासों में व्यापक रुप में आयी। आजादी के बाद विभाजन से उत्पन्न अराजक, हिंसा के तांडवनृत्य ने साहित्यकारों को समाज की ओर उन्मुख किया। उपन्यासकार व्यक्तिनिष्ठ से वस्तुनिष्ठ हुये। अमृतलाल नागर, उदयशंकर भट्ट, विष्णू प्रभाकर आदि उपन्यासकारों ने व्यक्ति और समाज के परस्पर सापेक्ष संबंधों पर ध्यान केन्द्रित किया। स्त्री-पुरुष संबंध के नये दृष्टिकोण उभरे। इस परिवर्तित रुप का चित्रण उषाप्रियंवदा, कृष्णासोबती, रजनी पानिक्कर, शिवानी आदि लेखिकाओंने समर्थ रुप में किया। जैनेन्द्रकुमार, अज्ञेय, यशपाल, अश्क, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, भिष्म सहानी, रांगेय राघव, फणीश्वरनाथ रेणु, नागार्जून, रामदरश मिश्र, श्रीलाल शुक्ल, प्रभाकर माचवे, निर्मल वर्मा आदि उपन्यासकारों ने इस युग के उपन्यास परम्परा को विकसित किया है। नयी प्रवृत्तियों को जन्म देकर उपन्यास के क्षेत्र को व्यापक बनाया है। आगामी पंक्तियों में हम उपन्यास के इन सारे प्रकारों का संक्षेप में अध्ययन करेंगे जिन्होंने इस युग के उपन्यास को प्रौढ बनाया।

(१) सामाजिक उपन्यास --

हिन्दी उपन्यास साहित्य अपने उदयकाल से सामाजिक प्रश्नों को लेकर चला है। इनमें व्यक्ति और समाज का परस्परावलम्बी सामंजस्य होता है। प्रेमचंद जी ने आदर्शोन्मुख सुधारवादी दृष्टि रखते हुये सामाजिक उपन्यासों की रचना की, तो प्रसादजी ने सामाजिक मूल्यों की शव परीक्षा की। परवर्ती काल में इस धारा के उपन्यासों में उल्लेखनीय है भगवती चरण वर्मा के 'चित्रलेखा', 'पतन', 'भूले बिसरे चित्र' आदि उपन्यास। तथा भगवती प्रसाद वाजपेयी के 'चलते चलते', 'सपना बिक गया', 'सुनीराह' आदि सामाजिक उपन्यासों का भी अनन्य साधारण महत्व है। इसी तरह उपेंद्रनाथ अश्क के 'गिरती दीवारें', 'एक नन्हीं कंदिल', अमृतलाल नागर के 'बूंद और समुद्र', 'सुहाग के नूपुर', उदयशंकर भट्ट का 'सागर', अंचल जी का 'उल्का', विष्णुप्रभाकर का 'तट के बन्धन' जैसे उपन्यास सामाजिक उपन्यास धारा के महत्वपूर्ण उल्लेखनीय उपन्यास हैं। 'इन उपन्यासों में नवीन जीवन शक्तियाँ पुरानी शक्तियों को नष्ट कर एक नवीन जन मंगलकारी समाज निर्माण की कोशिश नजर आती है।' [१]

(२) समाजवादी उपन्यास --

समाज केन्द्रित उपन्यास की दो कोटियाँ हैं (१) सामाजिक, (२) समाजवादी। समाजवादी उपन्यासों में लेखक की निजी दृष्टि न होकर वह मार्क्सवादी दृष्टि होती है। विषय सामाजिक होकर यथार्थ का चित्रण होता है। इनमें सदैव सामान्य पिसी हुई जनता और जीवन की नवीन शक्तियों के प्रति सहानुभूति तथा उन्हें स्थापित करने का भाव होता है। समाजवाद की स्थापना में ही समूची मानवता के हित की कल्पना तथा भावना निहित होती है। समाजवादी उपन्यासधारा में यशपाल जी का नाम अग्रणी

---

१ हिन्दी उपन्यास - एक अन्तर्यात्रा - रामदरश मिश्र - पृ. १३०

है। ' दादा कामरेड ', " देशद्रोही ', ' पार्टी कामरेड ', ' झूठा - सच ', आदि उनके उल्लेखनीय समाजवादी उपन्यास है। विभाजन की विभीषिका को आधार मानकर लिखा गया ' झूठा-सच ' उपन्यास उनकी बहुमूल्य मौलिक रचना है। नागार्जुन के ' वरुण के बेटे ', ' दु:खमोचन ', ' रतिनाथ की चाची ' आदि बहुचर्चित उपन्यासों में बिहारग्राम जीवन की झाँकी मिलती है। भगवतीचरण वर्मा के ' भूले बिसरे चित्र ', ' टेढे मेढे रास्ते ' उपन्यासों में राष्ट्रीय धरातलपर पीढियों और वर्गोंका संघर्ष दिखाया गया है। भैरवनाथ गुप्त के ' मशाल ', ' गंगा मैया ' उपन्यासों का परिवेश आँचलिक होते हुए भी उनमें साम्यवादी सिध्दान्तों का आग्रह प्रबल है। यशपाल जी की तरह विभाजन की विभीषिका को आधार मानकर लिखा गया भीष्म साहनी का ' तमस ' उपन्यास, साहित्य अकादमी व्दारा पुरस्कृत हो चुका है। हाल ही में इस पर बनाये गये दूरदर्शन से प्रदोपित धारावाहिक कार्यक्रम ने बडी हलचल मचा दी थी। आज के सम्प्र संदर्भ में इस उपन्यास ने जनसाधारण में साम्प्रदायिकता के प्रति घृणा निर्माण करने में कमाल की सफलता हासिल की। अमृतराय के ' बीज ', ' हाथी के दाँत ', लक्ष्मीनारायण लाल के ' धरती की आँखें ', ' रुपाजीवा ' तथा राजेन्द्र यादव के ' सारा आकाश ', ' राह और मात ' आदि इस धारा के उल्लेखनीय उपन्यास हैं।

(३) ऐतिहासिक उपन्यास --

इस धारा में दो प्रकार के ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। एक वे जो मानवतावादी दृष्टि से वर्तमान के संदर्भ में अतीत का चित्रण करते हैं और दूसरे वे जो व्दन्व्दात्मक भौतिकवाद के आधारपर प्राचीन इतिहास का विश्लेषण अपनी धारणाओं की पुष्टि के हेतु करते हैं। पहले वर्ग में वृन्दावन लाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, अमृत लाल नागर, ह्जारीप्रसाद व्दिवेदी आदि आते हैं, तो दूसरे वर्ग में राहुलसांकृत्यायन,यशपाल, रांगेय राघव आदि । ऐतिहासिक उपन्यासों में वृन्दावनलाल वर्मा जी का स्थान अग्रणी है। उनके

उपन्यासों में इतिहास और साहित्य का सुन्दर सामंजस्य दिखाई देता है। ' विराटा की पद्मिनी ', ' झाँसी की रानी ', ' अहिल्याबाई ' आदि उनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं। चतुरसेनशास्त्री का ' वैशाली की नगरवधू ', हजारीप्रसाद द्विवेदी का ' बाणभट्ट ' की आत्मकथा ', अमृतलाल नागर का ' सुहाग के नूपुर ', यशपाल जी का ' दिव्या ' तथा रांगेयराघव का ' मुर्दों का टीला ' आदि उपन्यासोंका ऐतिहासिक उपन्यासों के विकास में महत्व पूर्ण योगदान है। शिवप्रसाद ' रुद्र ' की ' बहती गंगा ' उपन्यास तो ऐतिहासिक उपन्यास क्षेत्र में एक नया प्रयोग है, जिसमें काशी नगरी के दो सौ वर्षों के इतिहास को सुव्यवस्थित ढंग से चित्रित किया है। वीरेन्द्रकुमार जैन का ' मुक्तिदूत ', यादवेन्द्र का ' संन्यासी और सुन्दरी ' ये उपन्यास भी ऐतिहासिक उपन्यासों में उल्लेखनीय माने जाते हैं। कुलमिलाकर हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में मानवतावादी प्रवृत्ति, मार्क्स का दर्शन प्रतिबिंबित हुआ नजर आता है।

(४) मनोवैज्ञानिक उपन्यास --

मनोवैज्ञानिक उपन्यास से तात्पर्य वे उपन्यास हैं, जो मूलत: मनोविश्लेषण पर आधारित होते हैं। मनोविश्लेषणवाद अपने सीमित अर्थ में आधुनिक चीज है। मनोविश्लेषणवाद मस्तिष्क के चेतन, उपचेतन और अचेतन जैसे तीन भागोंमें मस्तिष्क को विभाजितकर अचेतन को विशेष महत्व प्रदान करता है। इसी अचेतन मन में दमित वासनाएँ हमारे जीवन के हर कार्य को प्रभावित करती रहती है। इस धारणा को केन्द्र बनाकर लिखे जानेवाले उपन्यास प्रमुखत: मनोवैज्ञानिक उपन्यास माने जाते हैं। इस परम्परा के उपन्यासों में बाह्य संघर्ष की अपेक्षा व्यक्ति के अन्त: संघर्ष को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में उल्लेखनीय उपन्यासकार हैं, जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द जोशी, भगवतीचरण वर्मा, डा. देवराज

आदि। फ्रायड, युंग, एडलर के सिद्धान्त एवं मान्यताएँ उनके पथदर्शक हैं। इलाचन्द जोशी ने अपने 'संन्यासी', 'प्रेत और छाया', तथा 'पर्दे की रानी' जैसे उपन्यासों में व्यक्ति की दमित वासनाओं, कुण्ठाओं एवं अवचेतन की कथाओं का चित्रण किया है। भगवती चरण वर्मा के 'चित्रलेखा', 'टेढे मेढे रास्ते' जैसे उपन्यास भी इस संदर्भ में दृष्टव्य है। अज्ञेय जी के 'शेखर एक जीवनी', 'नदी के द्वीप' जैसे उपन्यास गंभीर शैली में यौन - प्रवृत्तियों का चित्रण करने के संदर्भ में उल्लेखनीय है। प्रेमचंद के परवर्ती काल के सफल उपन्यासकार जैनेन्द्र जी ने अपने 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र' एवं 'कल्याणी' जैसे उपन्यासों में गाँव की जगह नगर जीवन को अपनी लेखनी का केन्द्र बनाया और महानगरों में बसे शिक्षित एवं मध्यवर्ग की विभिन्न कुण्ठाओं को चित्रित किया है। इस धारा के अन्य उपन्यासकारों में डा.देवराज, धर्मवीर भारती, प्रभाकर माचवे, नरेश मेहता, निर्मल वर्मा आदि के नामों को कैसा भूला जा सकता है? 'मनोविश्लेषणवादी सिध्दान्तों ने साहित्य को बहुत देर तक प्रभावित किया है। उन्होंने साहित्य की सर्जना और विवेचना दोनों को बहुत कुछ बदला और सच बात तो यह है कि मनोविश्लेषण-वाद ने जीवन के समस्त स्वीकृत मूल्यों और सत्यों के बारे में सोचने को बाध्य किया।'[१] रामदरश मिश्र के इस वक्तव्य का गहरा अहसास - विहंगमावलोकन के सम्यक् हुये बिना नहीं रहता।

(५) आँचलिक उपन्यास --

आँचलिकता, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास के विकास की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। ऐसे उपन्यासों में किसी प्रदेश विशेष की संस्कृति को उसके सजीव वातावरण के द्वारा व्यापक रुप से प्रस्तुत किया जाता है। अंचल विशेष के जीवन एवं संस्कृति को साकार करना इनका लक्ष्य होता है।

---

१ हिन्दी उपन्यास - एक अन्तर्यात्रा - रामदरश मिश्र - पृ.८३

'सामान्यरुप से आँचलिक उपन्यासों में कोई चरित्र विशेष पात्र या पात्री के रुप में - क्रियाशील नहीं रहता वरन् उसमें पात्रों के एक समूह की मुख्यता होती है।'[१] डा. ज्ञानचन्द गुप्त की राय में हिन्दी आँचलिक उपन्यास की आँचलिकता की प्रवृत्ति उसकी अपनी प्रवृत्ति है, जिसका नामकरण एवं प्रारम्भ करने का श्रेय फणीश्वरनाथ 'रेणु' और उनके 'मैला आँचल' उपन्यास को है। इस में बिहार प्रदेश की संस्कृति का सजीव चित्रण है। 'मैला आँचल' के प्रकाशन के पश्चात ही आँचलिक शब्द व्यवहार में प्रचलित हुआ, लेकिन इससे पहले भी कुछ ऐसे उपन्यास हैं, जिनमें आँचलिकता के सभी तत्व विद्यमान नजर आते हैं। जैसे 'नागार्जुन के 'बलचनमा' उस उपन्यास में लोक जीवन की व्यापकता को आत्मसात करके मिथिला प्रान्त की शस्यश्यामला भूमि, आमराइयाँ, तालाब-पोखरों का एवं ग्रामीण समाज का बड़ा सजीव चित्रण किया गया है।'[२] हिन्दी में आँचलिकता का प्रारम्भ किस रचना से हुआ, इस संबंध में मत वैभिन्य हैं, फिर भी आँचलिकता के प्रचलन में फणीश्वरनाथ 'रेणु' शीर्षस्थ है।

आँचलिक उपन्यास परम्पराके विकास में सहयोग देने वाले उपन्यासकारों की सूची तो बहुत लम्बी हो सकती है, किन्तु यहाँ चुनिंदा उपन्यासकारों तथा उनके उपन्यासों की सूची देना ही समुचितक है। फणीश्वरनाथ 'रेणु', का 'मैला आँचल', 'परती परिकथा', नागार्जुन का 'बलचनमा', 'दु:खमोचन', डा. राही मासूम रजा का 'आधा गाँव', रामदरश मिश्र का 'पानी की प्राचीर', शिवप्रसाद सिंह का 'अलग अलग वैतरणी', श्रीलाल शुक्ल का 'रागदरबारी', हिमांशु श्रीवास्तव का 'नदी फिर बह चली', उदयशंकर भट्ट का 'सागर लहरे और मनुष्य', रांगेय राघव का 'कबतक पुकारुं', शैलेश

---

१ हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास - डा.प्रतापनारायण टंडन - पृ.२०३

२ स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास - क्रान्ति वर्मा, पृ.१८७

मटियानी का 'हलदार' , राजेन्द्र अवस्थी का 'जंगल के फूल' आदि उपन्यास इस संदर्भ में दृष्टव्य हैं। इस प्रकार प्रेमचन्दोत्तर युग में उपन्यासकारों ने हिन्दी उपन्यास को बहुआयामी बनाया। आधुनिक चुनौती को स्वीकार कर नये नये मूल्योंकी खोज की है। कहानी और कविता की तरह उपन्यास क्षेत्र में भी नवीन प्रयोग किये जा रहे हैं। उपन्यास साहित्य के जो विस्तृति या विविधता प्राप्त की है, वह सचमुच उज्वल भविष्य की आशा प्रदान करनेवाली है।

(ई) हिन्दी उपन्यास परम्परा में शेवडे जी का अविर्भाव —

हिन्दी उपन्यास के उद्भव और विकास के समग्र अध्ययन के बाद उपन्यास कार शेवडे जी का अविर्भाव कब और कैसे हुआ यह देखना आवश्यक ही नहीं तो अनिवार्य भी है। सन १९३२ में शेवडेजी ने 'ईसाईबाला' उपन्यास लिखकर इस प्रांगण में कदम रखा। यह उनकी प्रथम औपन्यासिक कृति है। इस समय शेवडे जी असहयोग आन्दोलन में शिक्षा दीक्षा का बहिष्कार कर राजनीतिक गतिविधियों में व्यस्त थे। गांधीजी की साम्प्रादायिक एकता की बात से प्रभावित हुये थे। इसी समय आन्तरजाति विवाह की बहस ने समाज में अपनी जडे फैलायी थी। मगर प्रगतिशीलता विचारों तक सीमित थी। इसी वजहसे साम्प्रदायिक तनाव भी उत्पन्न होते थे। उस पृष्ठभूमि की झाँकी उनके 'ईसाईबाला' उपन्यास में दिखाई देती है। उपन्यास की नायिका एक ईसाई युवती है, तो नायक एक आदर्शवादी युवक है। दोनों स्वतंत्रता संग्राम के कार्यकर्ता हैं। समाज की परवाह न करते हुये दोनों आन्तरजातिय विवाह करते हैं। आन्तरजाति विवाह होने के कारण समाज उन्हें बहिष्कृत करता है। पर वे अपने इरादे के पक्के हैं। स्वतंत्रता संग्राम में समाज की सेवा कर उनका दिलजीत लेते हैं और आशिष पाते हैं। 'ईसाईबाला' उपन्यास प्रकाशित हुआ तब प्रेमचंद युग चल रहा था। प्रेमचंद के साथ साथ जयशंकर प्रसाद, शिवपूजन सहाय, विश्वंभरनाथ कौशिक', जैनेन्द्रकुमार, इलाचन्द जोशी आदि उपन्यासकार इस युगीन प्रवृत्तियोंको

विकसित कर रहे थे। समाज की बहुविध समस्याएँ उपन्यास की विषय वस्तु बनी थी। सुधारवादी आन्दोलन की छाया में गांधी की आँधी आयी थी और आदर्शोन्मुख यथार्थवाद उनका लक्ष्य बन गया था। इन्हीं प्रवृत्तियों की झाँकी शेवडे जी के प्रथम उपन्यास 'ईसाई बाला' में नजर आती है। वैसे देखा जाय तो शेवडे जी प्रेमचन्दोत्तरकालीन उपन्यासकार है, पर उपन्यासकार के रुप में उनका अविर्भाव प्रेमचन्द युग में ही हुआ है। इसलिये वे प्रेमचन्द युग के उत्तराधिकारी कहे जा सकते हैं। परवर्ती काल में प्रेमचन्द युग के आदर्शों को स्वीकारकर गांधीवादी विचारों का समर्थन करते हुये शेवडे जी ने अपने उपन्यास लिखे। शेवडे जी ने जब हिन्दी उपन्यास के प्रांगण में कदम रखा तब का हिन्दी उपन्यास आदर्शोन्मुख यथार्थवादी था। अत: यह स्वाभाविक ही है कि शेवडे जी के आरंभिक उपन्यासों में इसकी छबी हो। शेवडे जी राजनीतिक दृष्टि से महात्मा गांधी को अपना आदर्श मानते थे, तो साहित्यिक संदर्भों में प्रेमचन्द को। यही कारण है कि अविर्भाव के समय के उपन्यासकार शेवडे में इन दोनों का प्रभाव स्पष्ट रुप से दृष्टिगोचर होता है।

(उ) निष्कर्ष —

हिन्दी उपन्यास के उद्भव और विकास के समग्र मूल्यांकन के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सन १८७० से अबतक के कालखण्ड में हिन्दी उपन्यास ने अभूतपूर्व प्रगति की है। अब हिन्दी उपन्यास प्रौढता के शिखरों को नाप रहा है। उसकी उपलब्धियाँ निःसंदेह महान हैं। हिन्दी के अधिकांश समीक्षक सन १८८२ ई.में प्रकाशित लाला श्रीनिवासदास के 'परीक्षागुरु' नामक उपन्यास को हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास मानते आ रहे हैं। मगर नई मान्यताओं के फलस्वरुप सन १८७० ई.में प्रकाशित 'देवरानी जेठानी की कहानी' हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास सिद्ध होता है। हिन्दी के प्रथम उपन्यास के प्रकाशन के समय देश की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थितियों में परिवर्तन हो

रहा था। इसलिये कहा जाता है कि देश में नवजागरण की किरणों के साथ ही हिन्दी उपन्यास का उदय हुआ। इस प्रारंभिक अवस्था में हिन्दी के उपन्यासों में उपदेश एवं मनोरंजन के लक्ष्यों की पूर्ति का प्रयास किया जाता था। हिन्दी उपन्यास के विकास को प्रेमचंदपूर्व युग, प्रेमचन्द युग और प्रेमचंदोत्तर युग में बाँटा जाता है। विशेषकर प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासकारों ने शिल्प, शैली के संदर्भ में नये प्रयोग कर हिन्दी उपन्यास को बहुआयामी बनाया। कथानक का सीमित परिवेश, चरित्रों की आवश्यकता, घटनाओं की उपयोगी आयोजना आदि उपन्यासों के कलेवर को सुगठित बनाने का श्रेय इसी युग के उपन्यासकारों को देना होगा।

सन १९३२ ई.में शेवडे जी ने 'ईसाईबाला' उपन्यास लिखकर हिन्दी उपन्यास के प्रांगण में कदम रखा। इस समय प्रेमचंद युग चल रहा था। समाज की बहुविध समस्याएँ उपन्यास की विषयवस्तु बनी थी। सुधारवादी आन्दोलन की छाया में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद उनका लक्ष्य बना था। इन्हीं प्रवृत्तियों की झाँकी शेवडे जी के प्रथम उपन्यास 'ईसाईबाला' में मिलती है। शेवडे जी राजनीतिक दृष्टिसे महात्मा गाँधी जी को अपना आदर्श मानते थे, तो साहित्यिक दृष्टि से प्रेमचन्द को। यही कारण है कि अविर्भाव के समय के शेवडे जी में इन दोनों का प्रभाव स्पष्ट रुप से दृष्टिगोचर होता है।

..